ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 2, March 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

स्वस्थ समाज एवं उन्नत 'राष्ट्र' की संकल्पना: योग दर्शन के सन्दर्भ में

Dr. K.R.Mahiya

Assistant Professor in Sanskrit, Govt. Girls College Ajmer, Rajasthan, India

सार

योगदर्शन छः आस्तिक दर्शनों (षड्दर्शन) में से एक है। इसके प्रणेता पतञ्जलि मुनि हैं। यह दर्शन सांख्य दर्शन के 'पूरक दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दर्शन का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को वह मार्ग दिखाना है जिस पर चलकर वह जीवन के परम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति कर सके। अन्य दर्शनों की भांति योगदर्शन तत्त्वमीमांसा के प्रश्नों (जगत क्या है, जीव क्या है?, आदि) में न उलझकर मुख्यतः मोक्षप्राप्ति के उपाय बताने वाले दर्शन की प्रस्तुति करता है। किन्तु मोक्ष पर चर्चा करने वाले प्रत्येक दर्शन की कोई न कोई तात्विक पृष्टभूमि होनी आवश्यक है। अतः इस हेतु योगदर्शन, सांख्यदर्शन का सहारा लेता है और उसके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वमीमांसा को स्वीकार कर लेता है। इसलिये प्रारम्भ से ही योगदर्शन, सांख्यदर्शन से जुड़ा हुआ है। [1]

प्रकृति, पुरुष के स्वरूप के साथ ईश्वर के अस्तित्व को मिलाकर मनुष्य जीवन की आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिये दर्शन का एक बड़ा व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक रूप योगदर्शन में प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रारम्भ पतञ्जलि मुनि के योगसूत्रों से होता है। योगसूत्रों की सर्वोत्तम व्याख्या व्यास मुनि द्वारा लिखित व्यासभाष्य में प्राप्त होती है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने मन (चित) की वृत्तियों पर नियन्त्रण रखकर जीवन में सफल हो सकता है और अपने अन्तिम लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

योगदर्शन, सांख्य की तरह द्वैतवादी है। सांख्य के तत्त्वमीमांसा को पूर्ण रूप से स्वीकारते हुए उसमें केवल 'ईश्वर' को जोड़ देता है। इसलिये योगदर्शन को 'सेश्वर सांख्य' (स + ईश्वर सांख्य) कहते हैं और सांख्य को 'निरीश्वर सांख्य' कहा जाता है।[2]

परिचय

योगदर्शन में पुरूष तत्व केन्द्रीय विषय के रूप में प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि पुरूष और प्रकृति दोनों की स्वतन्त्र सत्ता मानी गयी है परन्तु तात्विक रूप में पुरूष की सत्ता ही सर्वोच्च है। पुरूष के दो भेद कहे गये हैं । पुरूष को चैतन्य एवं अपरिणामी कहा गया है, किन्तु अविद्या के कारण पुरूष जड़ एवं परिणाम चित्त में स्वयं को आरोपित कर लेता है। पुरूष और चित्त के संयुक्त हो जाने पर विवेक जाता रहता है और पुरूष स्वयं को चित्त रूप में अनुभव करने लगता है। यह अज्ञान ही पुरूष के समस्त दुःखों, क्लेशों का कारण हैं। योग दर्शन का उद्देश्य पुरूष को इस दुःख से, अज्ञान से, मुक्त कराना है। इसी तथ्य को सैद्धान्तिक रूप से योग दर्शन में हेय, हेय-हेतु, हान और हानोपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन चार क्रमों में पुरूष दुःखों से मुक्ति पाता है, इसलिये योग में इसे 'चतुर्व्यूहवाद' कहा गया है एवं इस चतुर्व्यूह से मुक्त होना ही योग का परम उद्देश्य है। चतुर्व्यूहवाद की विवेचना में ही योग दर्शन में पुरूष, पुरूषार्थ और पुरूषार्थशून्यता का दर्शन प्रकट होता है। पुरूष अविद्याग्रस्त होने पर संसार-चक्र में पड़ता है और पुरूषार्थशून्यता की अवस्था को प्राप्त करता है। पुरूष का परम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति है। योग में पुरूष को आत्मा का पर्याय माना गया है। अतः आत्मा, जो कि संख्या में असंख्य है, उसकी कैवल्य प्राप्ति तभी हो सकती है जब चतुर्व्यूह का पुरूषार्थ साधन कर दुःख के त्रिविध रूपों का सामाधान कर लिया जाय। दुःख के तीन रूप है - आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। पुरूषार्थशून्यता इन त्रितापों से ऊपर की अवस्था है। पुरूषार्थशून्यता के पश्चात् ही पुरूष की अपने स्वरूप की स्थिति होती है। योगदर्शन में इसे ही कैवल्य अथवा मोक्ष कहा गया है।

पतंजलि को कपिल द्वारा बताया गया सांख्यदर्शन ही अभिमत है। थोड़े में, इस दर्शन के अनुसार इस जगत् में असंख्य पुरुष हैं और एक प्रधान या मूल प्रकृति। पुरुष चित् है, प्रधान अचित्। पुरुष नित्य है और अपरिवर्तनशील, प्रधान भी नित्य है परन्तु परिवर्तनशील। दोनों एक दूसरे से सदा पृथक हैं, परन्तु एक प्रकार से एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। पुरुष के सान्निध्य से प्रकृति में परिवर्तन होने लगते हैं। वह क्षुब्ध हो उठती है।[1,2,3] पहले उसमें महत् या बुद्धि की उत्पत्ति होती है, फिर अहंकार की, फिर मन की। अहंकार से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों तथा पाँच तन्मात्राओं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध की, अन्त में इन पाँचों से आकाश, वायु, तेज, अप और क्षिति नाम के महाभूतों की। इन सबके संयोग वियोग से इस विश्व का खेल हो रहा है। संक्षेप में, यही सृष्टि का क्रम है। प्रकृति में परिवर्तन भले ही हो परन्तु पुरुष ज्यों का त्यों रहता है। फिर भी एक बात होती है। जैसे श्वेत स्फटिक के सामने रंग बिरंगे फूलों को लाने से उसपर उनका रंगीन प्रतिबिम्ब पड़ता है, इसी प्रकार पुरुष पर प्राकृतिक विकृतियों के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। क्रमश: वह बुद्धि से लेकर क्षिति तक से रंजित प्रतीत होता है, अपने को प्रकृति के इन विकारों से संबद्ध मानने लगता है। आज अपने को धनी, निर्धन, बलवान् दुर्बल, कुटुंबी, सुखी, दुःखी, आदि मान रहा है। अपने शुद्ध रूप से दूर जा पड़ा है। यह उसका

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

भ्रम, अविद्या है। प्रधान से बने हुए इन पदार्थो ने उसके रूप को ढँक रखा है, उसके ऊपर कई तह खोल पड़ गई है। यदि वह इन खोलों, इन आवरणों को दूर फेंक दे तो उसका छुटकारा हो जायगा। जिस क्रम से बँधा है, उसके उलटे क्रम से बन्धन टूटेंगे। पहले महाभूतों से ऊपर उठना होगा। अन्त में प्रधान की ओर से मुँह फेरना होगा। यह बन्धन वास्तविक नहीं है, परन्तु बहुत ही दृढ़ प्रतीत होते हैं। जिस उपयोग से बंधनों को तोड़कर पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो सके उस उपाय का नाम योग है। सांख्य के आचार्यो का कहना है: यद्वा तद्वा तदुच्छिति: परमपुरुषार्थः - जैसे भी हो सके पुरुष और प्रधान के इस कृत्रिम संयोग का उच्छेद करना परम पुरुषार्थ हैं।

योग का यही दार्शनिक धरातल है: अविद्या के दूर होने पर जो अवस्था होती है उसका वर्णन विभिन्न आचार्यों और विचारकों के विभिन्न ढँग से किया है। अपने-अपने विचार के अनुसार उन्होंने उसको पृथक नाम भी दिए हैं। कोई उसे कैवल्य कहता है, कोई मोक्ष, कोई निर्वाण। ऊपर पहुँचकर जिसको जैसा अनुभव हो वह उसे उस प्रकार कहे। वस्तुत: वह अवस्था ऐसी है, यतो वाचो निवर्तते अप्राप्य मनसा सह - जहाँ मन ओर वाणी की पहुँच नहीं है। [5,7,8]थोड़े से शब्दों में एक और बात का भी चर्चा कर देना आवश्यक है। असंख्य पुरुषों के साथ पतंजलि ने 'पुरुष विशेष' नाम से ईश्वर की सत्ता को भी माना है। सांख्य के आचार्य ऐसा नहीं मानते। वस्तुत: मानने की आवश्यकता भी नहीं है। यदि योगदर्शन में से वह थोड़े से सूत्र निकाल भी लें तो कोई अंतर नहीं पड़ता। योग की साधना की दृष्टि से ईश्वर को मानने, न मानने का विशेष महत्व नहीं है। ईश्वर की सत्ता को मानने वाले और न मानने वाले, दोनों योग में समान रूप से अधिकार रखते हैं।

भारतीय दर्शन में, षड् दर्शनों में से एक का नाम योग है।[14][15] योग दार्शनिक प्रणाली,सांख्य स्कूल के साथ निकटता से संबन्धित है।[16] ऋषि पतंजलि द्वारा व्याख्यायित योग संप्रदाय सांख्य मनोविज्ञान और तत्वमीमांसा को स्वीकार करता है, लेकिन सांख्य घराने की तुलना में अधिक आस्तिक है, यह प्रमाण है क्योंकि सांख्य वास्तविकता के पच्चीस तत्वों में ईश्वरीय सत्ता भी जोड़ी गई है।[17][18] योग और सांख्य एक दूसरे से इतने मिलते-जुलते है कि मेक्स म्युल्लर कहते है,"यह दो दर्शन इतने प्रसिद्ध थे कि एक दूसरे का अंतर समझने के लिए एक को प्रभु के साथ और दूसरे को प्रभु के बिना माना जाता है।...."[19] सांख्य और योग के बीच घनिष्ठ संबंध हेंरीच ज़िम्मेर समझाते है: इन दोनों को भारत में जुड़वा के रूप में माना जाता है, जो एक ही विषय के दो पहलू है।Sāṅkhya[41]यहाँ मानव प्रकृति की बुनियादी सैद्धांतिक का प्रदर्शन, विस्तृत विवरण और उसके तत्वों का परिभाषित, बंधन (बंधा) के स्थिति में उनके सहयोग करने के तरीके, सुलझावट के समय अपने स्थिति का विश्लेषण या मुक्ति में वियोजन मोक्ष की व्याख्या की गई है। योग विशेष रूप से प्रक्रिया की गतिशीलता के सुलझाव के लिए उपचार करता है और मुक्ति प्राप्त करने की व्यावहारिक तकनीकों को सिद्धांत करता है अथवा 'अलगाव-एकीकरण'(कैवल्य) का उपचार करता है।[20]

शारीरिक शिक्षा "संचलन के माध्यम से शिक्षा" है। इसका लक्ष्य हमारी शारीरिक क्षमता को अधिकतम करना है, जिससे हम जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वस्थ, ज्ञानवान्, कुशल, रचनात्मक, उत्पादक और प्रभावशाली बन सकें। इस प्रकार, शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन हेतु इष्टतम और सम्पूर्ण विकास के साथ खेल प्रतियोगिताओं में इष्टतम प्रदर्शन करना है। शारीरिक शिक्षा और मनोरंजन की राष्ट्रीय योजना के अनुसार, "शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य प्रत्येक बच्चे को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ बनाना और उसमें ऐसे वैयक्तिक और सामाजिक गुणों का विकास करना होना चाहिए जो उसे दूसरों के साथ सुख से रहने, और एक अच्छे नागरिक के रूप में निर्माण करने में सहायता करता है।"

उद्देश्य

- शारीरिक शिक्षा का मूल्य: शारीरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों को शारीरिक शिक्षा के मूल्य और स्वस्थ और सक्रिय जीवन शैली में इसके योगदान के बारे में जागरूक करना और इसकी सराहना करना है।
- अनुशासन में रुचि विकास: एक सुविकसित शारीरिक शिक्षा योजना का केन्द्र शिक्षा के प्रति पहल, उत्साह और प्रतिबद्धता दिखाते हुए उच्च स्तर की रुचि और व्यक्तिगत जुड़ाव को प्रोत्साहित करने वाली होनी चाहिए।
- इष्टतम शारीरिक औचित्य और स्वास्थ्य प्राप्ति: शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों का लक्ष्य किसी व्यक्ति की शारीरिक औचित्य और स्वास्थ्य का विकास तथा अपनी शारीरिक क्षमता के इष्टतम स्तर पर कार्य करना है। इसका उद्देश्य सर्वोत्तम स्वास्थ्य हेतु निद्रा, व्यायाम, भोजन आदि जैसे स्वस्थ आदतों का विकास करना है।
- संचलन के बारे में जागरूकता: शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम को व्यक्ति को यह अनुभव कराना चाहिए कि संचलन संचार, अभिव्यक्ति और सौन्दर्य प्रशंसा हेतु एक रचनात्मक माध्यम है। शारीरिक शिक्षा के माध्यम से मौलिक संचलन कौशल में दक्षता नृत्य जैसे अधिक विशिष्ट कौशल के विकास का समर्थन करती है।
- अंग तन्त्रों का विकास: शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य सभी अंग तन्त्रों जैसे श्वसन तन्त्र, परिसंचरण तन्त्र, पाचन तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र और पेशी तन्त्र का विकास करना है। इससे शारीरिक दक्षता और क्षमता में वृद्धि होती है।[9,10,11]
- तन्त्रिकापेशीय समन्वय: शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम की योजना इस तरह से विकसित की जानी चाहिए कि यह तन्त्रिका तन्त्र और पेशी तन्त्र के मध्य बेहतर सम्बन्ध बनाए रखने में सहायता करे। यह शरीर के विभिन्न अंगों के बीच नियन्त्रण और सन्तुलन विकसित करने में सहायता करता है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

- भावनात्मक विकास: प्रतियोगिताएँ खेल का एक अनिवार्य भाग हैं और साफल्य और वैफल्य से चिह्नित होती हैं। शारीरिक शिक्षा भावनात्मक स्थैर्य विकसित करने में सहायता करती है और साफल्य और वैफल्य को शालीनता से स्वीकार करना सिखाती है। ये गुण व्यक्ति के जीवन भर काम आते हैं। क्रीडांगण पर विभिन्न परिस्थितियाँ घटित होती हैं जिससे व्यक्ति क्रोध, सुख, ईर्ष्या, भय, ऐकल्य आदि भावनाओं को नियन्त्रित करना सीखते हैं। यह उन्हें भावनात्मक रूप से सन्तुलित बनाता है।
- सामाजिक विकास: शारीरिक शिक्षा सामाजिक विकास की ओर ले जाती है क्योंकि यह व्यक्ति को सामाजिक सम्पर्क और समूह में रहने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में समायोजित होने और सम्बन्ध बनाने में सहायता करती है। सहयोग, आज्ञाकारिता, तटस्थता, त्याग, निष्ठा, खेल भावना, आत्मविश्वास जैसे गुणों का विकास होता है। इन लक्षणों के विकास से व्यक्ति को एक अच्छा मनुष्य बनने में मदद मिलती है और एक स्वस्थ समाज का निर्माण भी होता है।
- संचालक कौशल विकास: शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम व्यक्ति को विभिन्न खेलों और कई अन्य शारीरिक गतिविधियों में सफल सहभागिता हेतु आवश्यक संचालक कौशल विकसित करने में सहायता करता है।
- आनन्द और सन्तुष्टि: एक शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम शारीरिक गतिविधि के माध्यम से आनन्द और सन्तुष्टि प्रदान करता है।
- मूल्यांकन कौशल का विकास: एक सुविकसित शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम प्रतिभागियों को विभिन्न प्रकार की शारीरिक गतिविधियों का ज्ञान और समझ दिखाने और अपने और दूसरों के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने में सहायता करता है।
- व्याख्यात्मक विकास: शारीरिक शिक्षा व्यक्तियों के बीच व्याख्यात्मक क्षमता विकसित करने में सहायता करती है जहाँ वे अपने स्थानीय और अन्तःसांस्कृतिक सन्दर्भ दोनों में शारीरिक गतिविधि पर गंभीर रूप से विचार कर सकते हैं।
- चरित्र निर्माण: एक सुसंरचित शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम वांछनीय जीवन परिणामों पर आधारित होना चाहिए जैसे सदाचार, स्वाभिमान, आत्मसाक्षम्य और दृढ़ता जैसे चरित्र गुणों का निर्माण, जिसमें तनाव के स्तर को कम करना, सकारात्मक विकास का अनुभव करना, शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ावा देना, चुनौतीपूर्ण जीवन लक्ष्य निर्धारण हेतु तैयार रहना, और सामाजिक समर्थक व्यवहार शामिल हैं।
- उपचारात्मक मूल्य: शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम सुरक्षा आदतें सिखाता है जहाँ कोई व्यक्ति सुधारात्मक अभ्यासों के बारे में सीख सकता है जिससे व्यक्तियों के मध्य सुरक्षा आदतों का वृद्धि मिलेगा।
- इष्टतम खेल प्रदर्शन: शारीरिक शिक्षा एक व्यक्ति को इष्टतम खेल प्रदर्शन स्तर पर लाती है।
- प्रभावी नागरिकता: अन्ततः, शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम एक प्रभावी नागरिक प्रस्तुत करता है जो बेहतर तरीके से देश की सेवा करता है।[12,13,15]

विचार-विमर्श

विद्या और अविद्या, बन्धन और उससे छुटकारा, सुख और दु:ख सब चित्त में हैं। अत: जो कोई अपने स्वरूप में स्थिति पाने का इच्छुक है उसको अपने चित्त को उन वस्तुओं से हटाने का प्रयत्न करना होगा, जो हठात् प्रधान और उसके विकारों की ओर खींचती हैं और सुख दु:ख की अनुभूति उत्पन्न करती हैं। इस तरह चित्त को हटाने तथा चित्त के ऐसी वस्तुओं से हट जाने का नाम वैराग्य है। यह योग की पहली सीढ़ी है। पूर्ण वैराग्य एकदम नहीं हुआ करता। ज्यों ज्यों व्यक्ति योग की साधना में प्रवृत्त होता है त्यों त्यों वैराग्य भी बढ़ता है और ज्यों ज्यों वेराग्य बढ़ता है त्यों त्यों साधना में प्रवृत्ति बढ़ती है। जेसा पतंजलि ने कहा है: दृष्ट और अनुश्रविक दोनों प्रकार के विषयों में विरक्ति, गांधी जी के शब्दों में अनासक्ति, होनी चाहिए। स्वर्ग आदि, जिनका ज्ञान हमको अनुश्रुति अर्थात् महात्माओं के वचनों और धर्मग्रन्थों से होता है, अनुश्रविक कहलाते हैं। योग की साधना को अभ्यास कहते हैं। इधर कई सौ वर्षो से साधुओं में इस आरम्भ में भजन शब्द भी चल पड़ा है।

चित्त जब तक इन्द्रियों के विषयों की ओर बढ़ता रहेगा, चंचल रहेगा। इन्द्रियाँ उसका एक के बाद दूसरी भोग्य वस्तु से सम्पर्क कराती रहेंगी। कितनों से वियोग भी कराती रहेंगी। काम, क्रोध, लोभ, आदि के उद्दीप्त होने के सैकड़ों अवसर आते रहेंगे। सुख दु:ख की निरन्तर अनुभूति होती रहेगी। इस प्रकार प्रधान ओर उसके विकारों के साथ जो बंधन अनेक जन्मों से चले आ रहे हैं वे दृढ़ से दृढ़तर होते चले जाएँगे। अत: चित्त को इन्द्रियों के विषयों से खींचकर अन्तर्मुखी करना होगा। इसके अनेक उपाय बताए गए हैं जिनके ब्योरे में जाने की आवश्यकता नहीं है। साधारण मनुष्य के चित्त की अवस्था क्षिप्त कहलाती है। वह एक विषय से दूसरे विषय की ओर फेंका फिरता है। जब उसको प्रयत्न करके किसी एक विषय पर लाया जाता है तब भी वह जल्दी से विषयंतर की ओर चला जाता है। इस अवस्था को विक्षिप्त कहते हैं। दीर्ध प्रयत्न के बाद साधक उसे किसी एक विषय पर देर तक रख सकता है। इस अवस्था का नाम एकाग्र है। चित्त को वशीभूत करना बहुत कठिन काम है। श्रीकृष्ण ने इसे प्रमाथि बलवत्-मस्त हाथी के समान बलवान्-बताया है।

परिणाम

चित्त को वश में करने में एक चीज से सहायता मिलती है। यह साधारण अनुभव की बात है कि जब तक शरीर चंचल रहता है, चित्त चंचल रहता है और चित्त की चंचलता शरीर को चंचल बनाए रहती है। शरीर की चंचलता नाड़ीसंस्थान की चंचलता पर निर्भर करती

है। जब तक नाड़ीसंस्थान संक्षुब्ध रहेगा, शरीर पर इंद्रिय ग्राह्य विषयों के आधात होते रहेंगे।[18,19,20] उन आधातों का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ेगा जिसके फलस्वरूप चित्त और शरीर दोनों में ही चंचलता बनी रहेगी। चित्त को निश्चल बनाने के लिये योगी वैसा ही उपाय करता है जैसा कभी-कभी युद्ध में करना पड़ता है। किसी प्रबल शत्रु से लड़ने में यदि उसके मित्रों को परास्त किया जा सके तो सफलता की संभावना बढ़ जाती है। योगी चित्त पर अधिकार पाने के लिए शरीर और उसमें भी मुख्यत: नाड़ीसंस्थान, को वश में करने का प्रयत्न करता है। शरीर भौतिक है, नाड़ियाँ भी भौतिक हैं। इसलिये इनसे निपटना सहज है। जिस प्रक्रिया से यह बात सिद्ध होती है उसके दो अंग हैं: आसन और प्राणायाम। आसन से शरीर निश्चल बनता है। बहुत से आसनों का अभ्यास तो स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाता है। पतंजलि ने इतना ही कहा है: स्थिर सुखमासनम् : जिसपर देर तक बिना कष्ट के बैठा जा सके वही आसन श्रेष्ठ है। यही सही है कि आसनसिद्धि के लिये स्वास्थ्य संबंधी कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। जैसा श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

युक्ताहार बिहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥

खाने, पीने, सोने, जागने सभी का नियन्त्रण करना होता है।

प्राणायाम शब्द के संबंध में बहुत भ्रम फैला हुआ है। इस भ्रम का कारण यह है कि आज लोग प्राण शब्द के अर्थ को प्राय: भूल गए हैं। बहुत से ऐसे लोग भी, जो अपने को योगी कहते हैं, इस शब्द के सम्बन्ध में भूल करते हैं। योगी को इस बात का प्रयत्न करना होता है कि वह अपने प्राण को सुषुम्ना में ले जाय। सुषुम्ना वह नाड़ी है जो मेरुदण्ड की नली में स्थित है और मस्तिष्क के नीचे तक पहुँचती है। यह कोई गुप्त चीज नहीं है। आँखों से देखी जा सकती है। करीब-करीब कनष्ठाि उँगली के बराबर मोटी होती है, ठोस है, इसमें कोई छेद नहीं है। प्राण का और साँस या हवा करनेवालों को इस बात का पता नहीं है कि इस नाड़ी में हवा के घुसने के लिये और ऊपर चढ़ने के लिये कोई मार्ग नहीं है। प्राण को हवा का समानार्थक मानकर ही ऐसी बातें कही जाती हैं कि अमुक महात्मा ने अपनी साँस को ब्रह्मांड में चढ़ा लिया। साँस पर नियंत्रण रखने से नाड़ीसंस्थान को स्थिर करने में निश्चय ही सहायता मिलती है, परंतु योगी का मुख्य उद्देश्य प्राण का नियंत्रण है, साँस का नहीं। प्राण वह शक्ति है जो नाड़ीसंस्थान में संचार करती है। शरीर के सभी अवयवों को और सभी धातुओं को प्राण से ही जीवन और सक्रियता मिलती है। जब शरीर के स्थिर होने से ओर प्राणायाम की क्रिया से, प्राण सुषुम्ना की ओर प्रवृत्त होता है तो उसका प्रवाह नीचे की नाड़ियों में से खिंच जाता है। अत: ये नाड़ियाँ बाहर के आधातों की ओर से एक प्रकार से शून्यवत् हो जाती हैं। पतंजलि, व्यापक रूप से औपचारिक योग दर्शन के संस्थापक माने जाते है।[21] पतंजलि योग, बुद्धि के नियंत्रण के लिए एक प्रणाली है जिसे राज योग के रूप में जाना जाता है।[22] पतंजलि उनके दूसरे सूत्र मे "योग" शब्द को परिभाषित करते है,[23] जो उनके पूरे काम के लिए व्याख्या सूत्र माना जाता है:

योग: चित्त-वृत्ति निरोध:

- योग सूत्र 1.2

तीन संस्कृत शब्दों के अर्थ पर यह संस्कृत परिभाषा टिकी है। अई.के.तैम्नी इसकी अनुवाद करते है की,"योग बुद्धि के संशोधनों (vṛtti [49]) का निषेध (nirodhaḥ [48]) है" (citta [50])। [24] योग की प्रारंभिक परिभाषा मे इस शब्द nirodhaḥ [52] का उपयोग एक उदाहरण है कि बौद्धिक तकनीकी शब्दावली और अवधारणाओं, योग सूत्र मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है; इससे यह संकेत होता है कि बौद्ध विचारों के बारे में पतंजलि को जानकारी थी और अपने प्रणाली मे उन्हें बुनाई.[25]स्वामी विवेकानंद इस सूत्र को अनुवाद करते हुए कहते है,"योग बुद्धि (चित्त) को विभिन्न रूप (वृत्ति) लेने से अवरुद्ध करता है।

वैसे तो योग हमेशा से हमारी प्राचीन धरोहर रही है। समय के साथ-साथ योग विश्व प्रख्यात तो हुआ ही है साथ ही इसके महत्व को जानने के बाद आज योग लोगों की दिनचर्या का अभिन्न अंग भी बन गया है। लेकिन योग के प्रचार-प्रसार में विश्व प्रसिद्ध योगगुरुओं का भी योगदान रहा है, जिनमें से अयंगार योग के संस्थापक बी के एस अयंगर, स्वामी शिवानंद और योगगुरु रामदेव का नाम अधिक प्रसिद्ध है।[75]

बीकेएस अंयगर

अयंगर को विश्व के अग्रणी योग गुरुओं में से एक माना जाता है और उन्होंने योग के दर्शन पर कई किताबें भी लिखी थीं, जिनमें 'लाइट ऑन योगा', 'लाइट ऑन प्राणायाम' और 'लाइट ऑन द योग सूत्राज ऑफ पतंजलि' शामिल हैं। [76] अयंगर का जन्म 14 दिसम्बर 1918 को बेल्लूर के एक गरीब परिवार में हुआ था। बताया जाता है कि अयंगर बचपन में काफी बीमार रहा करते थे। ठीक नहीं होने पर उन्हें योग करने की सलाह दी गयी और तभी से वह योग करने लगे। अयंगर को 'अयंगर योग' का जन्मदाता कहा जाता है। उन्होंने इस योग को देश-दुनिया में फैलाया। सांस की तकलीफ के चलते 20 अगस्त 2014 को उनका निधन हो गया।[77]

बाबा रामदेव

बाबा रामदेव भारतीय योग-गुरु हैं, उन्होंने योगासन व प्राणायामयोग के क्षेत्र में योगदान दिया है। रामदेव स्वयं जगह-जगह जाकर योग शिविरों का आयोजन करते हैं।

योग दिवस

21 जून 2015 को प्रथम अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया। इस अवसर पर 192 देशों और 47 मुस्लिम देशों में योग दिवस का आयोजन किया गया। दिल्ली में एक साथ ३५९८५ लोगों ने योगाभ्यास किया।इसमें 84 देशों के प्रतिनिधि मौजूद थे। इस अवसर पर भारत ने दो विश्व रिकॉर्ड बनाकर 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स' में अपना नाम दर्ज करा लिया है। पहला रिकॉर्ड एक जगह पर सबसे अधिक लोगों के एक साथ योग करने का बना, तो दूसरा एक साथ सबसे अधिक देशों के लोगों के योग करने का। [78]

योग का उद्देश्य योग के अभ्यास के कई लाभों के बारे में दुनिया भर में जागरूकता बढ़ाना है।लोगों के स्वास्थ्य पर योग के महत्व और प्रभावों के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए हर साल 21 जून को योग का अभ्यास किया जाता है। शब्द 'योग' संस्कृत से लिया गया है जिसका अर्थ है जुड़ना या एकजुट होना।

- शारीरिक लचीलापन बढ़ाता है

योग हमारे सभी मांसपेशियों को अलग-अलग तरीकों से जोड़ना सिखाकर शारीरिक शक्ति विकसित करता है। खड़े होना, बैठना या लेटना, प्रत्येक आसन विभिन्न मांसपेशियों के क्षेत्रों का परीक्षण कर सकता है, साथ ही साथ योग हमें अपने शरीर के बारे में जागरूक होने में मदद करता है।

- आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास बढ़ाएँ

आजकल कई लोग आत्म-सम्मान के साथ संघर्ष करते हैं। योग और ध्यान का अभ्यास उनके आत्म-सम्मान को बढ़ाने में काफी मदद कर सकता है। यह उनके मन और शरीर के बीच एक स्पष्ट संबंध विकसित करने में मदद करता है क्योंकि वे विभिन्न चालों का अभ्यास करते हैं।

- रचनात्मकता को आगे बढ़ाता है

अपनी रचनात्मकता को बढ़ाने के लिए योग एक अद्भुत तरीका है। आमतौर पर लोगो को योग और ध्यान सिखाने की तकनीकों में संगीत, ध्वनि और कहानी सुनाने का उपयोग किया जाता है, जो उनके लिए नई दुनिया खोलता है और साथ ही उनकी शब्दावली भी बढ़ाता है।

- ऊर्जा में वृद्धि करता है

सुबह-सुबह के समय योग करना फायदेमंद होता है। प्रत्येक दिन कुछ मिनट का योग आपको पूरे दिन ताजगी और ऊर्जा से भरा रखता हैं। यह शरीर से आलस को दूर करता है।

- नींद के चक्र में सुधार करता है

योग हमारे दिमाग और न्यूरोलॉजिकल सिस्टम को शांत करने के लिए सांस लेने का उपयोग करके तनाव का प्रबंधन करने में मदद करता है। योग का शारीरिक अभ्यास भी तनाव को कम करने और शरीर में शारीरिक रूप से ले जाने वाली नकारात्मक भावनाओं को छोड़ने में मदद करता है, जिससे हम जल्दी और लंबे समय तक सोए रहते हैं।

योग का लक्ष्य स्वास्थ्य में सुधार से लेकर मोक्ष (आत्मा को परमेश्वर का अनुभव) प्राप्त करने तक है।[79] जैन धर्म, अद्वैत वेदांत के मोनिस्ट संप्रदाय और शैव संप्रदाय के अन्तर में योग का लक्ष्य मोक्ष का रूप लेता है, जो सभी सांसारिक कष्ट एवं जन्म और मृत्यु के चक्र (संसार) से मुक्ति प्राप्त करना है, उस क्षण में परम ब्रह्मण के साथ समरूपता का एक एहसास है। महाभारत में, योग का लक्ष्य ब्रह्मा के दुनिया में प्रवेश के रूप में वर्णित किया गया है, ब्रह्म के रूप में, अथवा आत्मन को अनुभव करते हुए जो सभी वस्तुओं मे व्याप्त है।[80]

मीर्चा एलीयाडे योग के बारे में कहते हैं कि यह सिर्फ एक शारीरिक व्यायाम ही नहीं है, एक आध्यात्मिक तकनीक भी है। [81] सर्वपल्ली राधाकृष्णन लिखते हैं कि समाधि में निम्नलिखित तत्व शामिल हैं: वितर्क, विचार, आनंद और अस्मिता।[82]

निष्कर्ष

प्राणायाम का अभ्यास करना और प्राणायाम में सफलता पा जाना दो अलग अलग बातें हैं। परंतु वैराग्य और तीव्र संवेग के बल से सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। ज्यों-ज्यों अभ्यास दृढ़ होता है, त्यों-त्यों साधक के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। एक और बात होती है। वह जितना ही अपने चित्त को इंद्रियों और उनके विषयों से दूर खींचता है उतना ही उसकी ऐंद्रिय शक्ति भी बढ़ती है अर्थात् इंद्रियों की विषयों के भोग की शक्ति भी बढ़ती है। इसीलिये प्राणायाम के बाद प्रत्याहार का नाम लिया जाता है। प्रत्याहार का अर्थ है इंद्रियों को उनके विषयों से खींचना। वैराग्य के प्रसंग में यह उपदेश दिया जा चुका है परंतु प्राणायम तक पहँचकर इसकों विशेष रूप से दुहराने की आवश्यकता है। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार के ही समुच्चय का नाम हठयोग है। खेद की बात है कि कुछ अभ्यासी यहीं रुक जाते हैं। जो लोग आगे बढ़ते हैं उनके मार्ग को तीन विभागों में बाँटा जाता है: धारणा, ध्यान और समाधि। इन तीनों को एक दूसरे से बिल्कुल पृथक करना असंभव है। धारण पुष्ट होकर ध्यान का रूप धारण करती है और उन्नत ध्यान ही समाधि कहलाता है। पतंजलि ने तीनों को सम्मिलित रूप से संयम कहा है। धारणा वह उपाय है जिससे चित्त को एकाग्र करने में सहायता मिलती है। यहाँ उपाय शब्द का एकवचन में प्रयोग हुआ है परंतु वस्तुत: इस काम के अनेक उपाय हैं। इनमें से कुछ का चर्चा उपनिषदों में आया है। वैदिक वाड्मय में विद्या शब्द का प्रयोग किया गया है। किसी मंत्र के जप, किसी देव, देवी या महात्मा के विग्रह या सूर्य, अग्नि, दीपशिखा आदि को शरीर के किसी स्थानविशेष जेसे हृदय, मूर्घा, तिल अर्थात दोनों आँखों के बीच के बिंदु, इनमें से किसी जगह कल्पना में स्थिर करना, इस प्रकार के जो भी उपाय किए जायँ वे सभी धारणा के अंतर्गत हैं। जैसा कि कुछ उपायों को बतलाने के बाद पतंजलि ने यह लिख दिया है - यथाभिमत ध्यानाद्वा-जो वस्तु अपने को अच्छी लगे उसपर ही चित्त को एकाग्र करने से काम चल सकता है। किसी पुराण में ऐसी कथा आई है कि अपने गुरु की आज्ञा से किसी अशिक्षित व्यक्ति ने अपनी भैंस के माध्यम से चित्त को एकाग्र करके समाधि प्राप्त की थी।[2,3,5]

धारणा की सबसे उत्तम पद्धति वह है जिसे पुराने शब्दों में नादानुसंधान कहते हैं। कबीर और उनके परवर्ती संतों ने इसे सुरत शब्द योग की संज्ञा दी है। जिस प्रकार चंचल मृग वीणा के स्वरों से मुग्ध होकर चौकड़ी भरना भूल जाता है, उसी प्रकार साधक का चित्त नाद के प्रभाव से चंचलता छोड़कर स्थिर हो जाता है। वह नाद कौन सा है जिसमें चित्त की वृत्तियों को लय करने का प्रयास किया जाता है और यह प्रयास कैसे किया जाता है, ये बातें तो गुरुमुख से ही जानी जाती हैं। अंतर्नाद के सूक्ष्मत्तम रूप को प्रवल, ओंकार, कहते हैं। प्रणव वस्तुत: अनुच्चार्य्य है। उसका अनुभव किया जा सकता है, वाणी में व्यंजना नहीं, नादविंदूपनिषद् के शब्दों में:

> ब्रह्म प्रणव संयानं, नादो ज्योतिर्मय: शिव:।
> स्वयमाविर्भवेदात्मा मेयापायेऽशुमानिव॥

प्रणव के अनुसंधान से, ज्योतिर्मय और कल्याणकारी नाद उदित होता है। फिर आत्मा स्वयं उसी प्रकार प्रकट होता है, जेसे कि बादल के हटने पर चंद्रमा प्रकट होता है। आदि शब्द आंकार को परमात्मा का प्रतीक कहा जाता है। योगियों में सर्वत्र ही इसकी महिमा गाई गई है। बाइबिल के उस खंड में, जिसे सेंट जान्स गास्पेल कहते हैं, पहला ही वाक्य इस प्रकार हैं, आरंभ में शब्द था। वह शब्द परमात्मा के साथ था। वह शब्द परमात्मा था। सूफी संत कहते हैं हैफ़ दर बंदे जिस्म दरमानी, न शुनवी सौते पाके रहमानी दु:ख की बात है कि तू शरीर के बंधन में पड़ा रहता है और पवित्र दिव्य नाद को नहीं सुनता।

चित्त की एकाग्रता ज्यों ज्यों बढ़ती है त्यों त्यों साधकर को अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। मनुष्य अपनी इंद्रियों की शक्ति से परिचित नहीं है। उनसे न तो काम लेता है और न लेना चाहता है। यह बात सुनने में आश्चर्य की प्रतीत होती है, पर सच है। मान लीजिए, हमारी चक्षु या श्रोत्र इंद्रिया की शक्ति कल आज से कई गुना बढ़ जाय। तब न जाने ऐसी कितनी वस्तुएँ दृष्टिगोचर होने लगेंगी जिनको देखकर हम काँप उठेंगे। एक दूसरे के भीतर की रासायनिक क्रिया यदि एक बार देख पड़ जाय तो अपने प्रिय से प्रिय व्यक्ति की ओर से घृणा हो जायगी। हमारे परम मित्र पास की कोठरी में बैठे हमारे संबंध में क्या कहते हैं, यदि यह बात सुनने में आ जाय तो जीना दूभर हो जाय। हम कुछ वासनाओं के पुतले हैं। अपनी इंद्रयों से वहीं तक काम लेते हैं जहाँ तक वासनाओं की तृप्ति हो। इसलिये इंद्रियों की शक्ति प्रसुप्त रहती है परंतु जब योगाभ्यास के द्वारा वासनाओं का न्यूनाधिक शमन होता है तब इंद्रियाँ निर्बाध रूप से काम कर सकती हैं और हमको जगत् के स्वरूप के वास्तविक रूप का कुछ परिचय दिलाती हैं। इस विश्व में स्पर्श, रूप, रस और गंध का अपार भंडार भरा पड़ा है जिसकी सत्ता का हमको अनुभव नहीं हैं। अंर्तमुख होने पर बिना हमारे प्रयास के ही इंद्रियाँ इस भंडार का द्वार हमारे सामने खोल देती हैं। सुषुम्ना में नाड़ियों की कई ग्रंथियाँ हैं, जिनमें कई जगहों से आई हुई नाड़ियाँ मिलती हैं। इन स्थानों को चक्र कहते हैं। इनमें से विशेष रूप से छह चक्रों का चर्चा योग के ग्रंथों में आता है।[9,10,11] सबसे नीचे मुलाधार है जो प्राय: उस जगह पर है जहाँ सुषुम्ना का आरंभ होता है। और सबसे ऊपर आज्ञा चक्र है जो तिल के स्थान पर है। इसे तृतीय नेत्र भी कहते हैं। थोड़ा और ऊपर चलकर सुषुम्ना मस्तिष्क के नाड़िसंस्थान से मिल जाती है। मस्तिष्क के उस सबसे ऊपर के स्थान पर जिसे शरीर विज्ञान में सेरेब्रम कहते हैं, सहस्रारचक्र है। जैसा कि एक महात्मा ने कहा है:

> मूलमंत्र करबंद विचारी सात चक्र नव शोधै नारी।।

योगी के प्रारंभिक अनुभवों में से कुछ की ओर ऊपर संकेत किया गया है। ऐसे कुछ अनुभवों का उल्लेख श्वेताश्वर उपनिषद् में भी किया गया है। वहाँ उन्होंने कहा है कि अनल, अनिल, सूर्य, चंद्र, खद्योत, धूम, स्फुलिंग, तारे अभिव्यक्तिकरानि योगे हैंश् यह सब योग

में अभिव्यक्त करानेवाले चिह्न हैं अर्थात् इनके द्वारा योगी को यह विश्वास हो सकता है कि मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ। इसके ऊपर समाधि तक पहुँचते पहुँचते योगी को जो अनुभव होते हैं उनका वर्णन करना असंभव है। कारण यह है कि उनका वर्णन करने के लिये साधारण मनुष्य को साधारण भाषा में कोई प्रतीक या शब्द नहीं मिलता। अच्छे योगियों ने उनके वर्णन के संबंध में कहा है कि यह काम वैसा ही है जैसे गूँगा गुड़ खाय। पूर्णांग मनुष्य भी किसी वस्तु के स्वाद का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता, फिर गूँगा बेचारा तो असमर्थ है ही। गुड़ के स्वाद का कुछ परिचय फलों के स्वाद से या किसी अन्य मीठी चीज़ के सादृश्य के आधार पर दिया भी जा सकता है, पर जैसा अनुभव हमको साधारणत: होता ही नहीं, वह तो सचमुच वाणी के परे हैं।

समाधि की सर्वोच्च भूमिका के कुछ नीचे तक अस्मिता रह जाती है। अपनी पृथक सत्ता अहम् अस्मि (मैं हूँ) यह प्रतीति रहती है। अहम् अस्मि = मैं हूँ की संतान अर्थात निरंतर इस भावना के कारण वहाँ तक काल की सत्ता है। इसके बाद झीनी अविद्या मात्र रह जाती है। उसके शय होने की अवस्था का नाम असंप्रज्ञात समाधि है जिसमें अविद्या का भी क्षय हो जाता है और प्रधान से कल्पित संबंध का विच्छेद हो जाता है। यह योग की पराकाष्ठा है। इसके आगे फिर शास्त्रार्थ का द्वार खुल जाता है। सांख्य के आचार्य कहते हैं कि जो योगी पुरुष यहाँ तक पहुँचा, उसके लिये फिर तो प्रकृति का खेल बंद हो जाता है। दूसरे लोगों के लिये जारी रहता है। वह इस बात को यों समझाते हैं। किसी जगह नृत्य हो रहा है। कई व्यक्ति उसे देख रहे हैं। एक व्यक्ति उनमें ऐसा भी है जिसको उस नृत्य में कोई अभिरुचि नहीं है। वह नर्तकी की ओर से आँख फेर लेता है। उसके लिये नृत्य नहीं के बराबर है। दूसरे के लिये वह रोचक है। उन्होंने कहा है कि उस अजा के साथ अर्थात नित्या के साथ अज एकोऽनुशेते = एक अज शयन करता है और जहात्येनाम् भुक्तभोगाम् तथान्य:-उसके भोग से तृप्त होकर दूसरा त्याग देता है।

अद्वैत वेदान्त के आचार्य सांख्यसंमत पुरुषों की अनेकता को स्वीकार नहीं करते। उनके अतिरिक्त और भी कई दार्शनिक संप्रदाय हैं जिनके अपने अलग अलग सिद्धांत हैं। पहले कहा जा चुका हैं कि इस शास्त्रार्थ में यहां पड़ने की आवश्यकता नहीं हैं। जहां तक योग के व्यवहारिक रूप की बात है उसमें किसी को विरोध नहीं है। वेदांत के आचार्य भी निर्दिध्यासन की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं और वेदांत दर्शन में व्यास ने भी असकृदभ्यासात् ओर आसीन: संभवात् जैसे सूत्रों में इसका समर्थन किया है। इतना ही हमारे लिये पर्याप्त है।

साधारणत: योग को अष्टांग कहा जाता है परंतु यहाँ अब तक आसन से लेकर समाधि तक छह अंगों का ही उल्लेख किया गया है। शेष दो अंगों को इसलिये नहीं छोड़ा कि वे अनावश्यक हैं वरन् इसलिए कि वह योगी ही नहीं प्रत्युत मनुष्य मात्र के लिए परम उपयोगी हैं। उनमें प्रथम स्थान यम का है। इनके संबंध में कहा गया है कि यह देश काल, समय से अनवच्छिन्न ओर सार्वभौम महाव्रत हैं अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के साथ इनका पालन करना चाहिए। दूसरा अंग नियम कहलाता है। जो लोग ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते उनके लिये ईश्वर पर निष्ठा रखने का कोई और नहीं है। [13,15,17]परंतु वह लोग भी प्राय: किसी न किसी ऐसे व्यक्ति पर श्रद्धा रखते हैं जो उनके लिये ईश्वर तुल्य है। बौद्ध को बुद्धदेव के प्रति जो निष्ठा है वह उससे कम नहीं है जो किसी भी ईश्वरवादी को ईश्वर पर होती होगी। एक और बात है। किसी को ईश्वर पर श्रद्धा हो या न हो, योग मार्ग के उपदेष्टा गुरु पर तो अनन्य श्रद्धा होनी ही चाहिए। योगाभ्यासी के लिये गुरु का स्थान किसी भी दृष्टि से ईश्वर से कम नहीं। ईश्वर हो या न हो परंतु गुरु के होने पर तो कोई संदेह हो ही नहीं सकता। एक साधक चरणादास जी की शिष्या सहजोबाई ने कहा है:

गुरुचरनन पर तन-मन वारूँ, गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ।

आज कल यह बात सुनने में आती है कि परम पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिये ज्ञान पर्याप्त है। योग की आवश्यकता नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं, वह ज्ञान शब्द के अर्थ पर गंभीरता से विचार नहीं करते। ज्ञान दो प्रकार का होता है-तज्ज्ञान और तद्विषयक ज्ञान। दोनों में अंतर है। कोई व्यक्ति अपना सारा जीवन रसायन आदि शास्त्रों के अध्ययन में बिताकर शक्कर के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकता है। शक्कर के अणु में किन किन रासायनिक तत्वों के कितने कितने परमाणु होते हैं? शक्कर कैसे बनाई जाती है? उसपर कौन कौन सी रासानिक क्रिया और प्रतिक्रियाएँ होती हैं? इत्यादि। यह सब शक्कर विषयक ज्ञान है। यह भी उपयोगी हो सकता है परंतु शक्कर का वास्तविक ज्ञान तो उसी समय होता है जब एक चुटकी शक्कर मुँह में रखी जाती है। यह शक्कर का तत्वज्ञान है। शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह सच्चा आध्यात्मिक ज्ञान है और उसके प्रकाश में तद्विषयक ज्ञान भी पूरी तरह समझ में आ सकता हैं। इसीलिये उपनिषद् के अनुसार जब यम ने नचिकेता को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश दिया तो उसके साथ में योगविधि च कृत्स्नम् की भी दीक्षा दी, नहीं तो नचिकेता का बोध अधूरा ही रह जाता। जो लोग भक्ति आदि की साधना रूप से प्रशंसा करते हैं उनकोश् भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि यदि उनके मार्ग में वित्त को एकाग्र करने का कोई उपाय है तो वह वस्तुत: योग की धारणा अंग के अंतर्गत है। यह उनकी मर्जी है कि सनातन योग शब्द को छोड़कर नये शब्दों का व्यवहार करते हैं।

योग के अभ्यास से उस प्रकार की शक्तियों का उदय होता है जिनको विभूति या सिद्धि कहते हैं। यदि पर्याप्त समय तक अभ्यास करने के बाद भी किसी मनुष्य में ऐसी असाधारण शक्तियों का आगम नहीं हुआ तो यह मानना चाहिए कि वह ठीक मार्ग पर नहीं चल रहा है। परन्तु सिद्धियों में कोई जादू की बात नहीं है। इंद्रियों की शक्ति बहुत अधिक है परंतु साधारणत: हमको उसका ज्ञान नहीं होता और न हम उससे काम लेते हैं। अभयासी को उस शक्ति का परिचय मिलता है, उसको जगत् के स्वरूप के संबंध में ऐसे अनुभव होते हैं जो दूसरों को प्राप्त नहीं हैं।[19,20] दूर की या छिपी हुई वस्तु को देख लेना, व्यवहृत बातों को सुन लेना इत्यादि

इंद्रियों की सहज शक्ति की सीमा के भीतर की बाते हैं परंतु साधारण मनुष्य के लिये यह आश्चर्यश् का विषय हैं, इनकों सिद्धि कहा जायगा। इसी प्रकार मनुष्य में और भी बहुत सी शक्तियाँ हें जो साधारण अवस्था में प्रसुप्त रहती हैं। योग के अभ्यास से जाग उठती हैं। यदि हम किसी सड़क पर कहीं जा रहे हो तो अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए भी अनायास ही दाहिने बाएँ उपस्थित विषयों को देख लेंगे। सच तो यह है कि जो कोई इन विषयों को देखने के लिये रुकेगा वह गन्तव्य स्थान तक पहुँचेगा ही नहीं ओर बीच में ही रह जायगा। इसीलिये कहा गया है कि जो कोई सिद्धियों के लिये प्रयत्न करता है वह अपने को समाधि से वंचित करता है। पतंजलि ने कहा है:

ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ।

अर्थात् ये विभूतियाँ समाधि में बाधक हैं परंतु समाधि से उठने की अवस्था में सिद्धि कहलाती हैं।[20]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. ^ छह आस्तिक दर्शन सम्प्रदायों के एक सिंहावलोकन के लिए, समूह पर विस्तार के साथ देखें : राधाकृष्णन अंड मूर, "सामग्री" और पीपी. स्कूलों ^453-487.
2. ^ योग घराने के एक संक्षिप्त सिंहावलोकन के लिए देखें: चटर्जी अंड दत्ता, पी. 43.
3. ^ दर्शन और संख्या के बीच घनिष्ठ संबंध के लिए देखें: चटर्जी अंड दत्ता, पी. 43.
4. ^ अवधारणाओं के योग स्वीकृति के लिए, लेकिन भगवान के लिए एक वर्ग के जोड़ने की क्रिया के साथ देखें: राधाकृष्णन अंड मूर, पी. 453.
5. Samkhya के 25 सिद्धांतों को योगा ने स्वीकार करने के लिए देखें: चटर्जी अंड दत्ता, पी. 43.
6. ^ म्युलर (1899), अध्याय 7, "योग फिलोसोफी", पी. १०४.
7. ^ ज़िम्मेर (1951), पी. 280.
8. ^ दार्शनिक प्रणाली के संस्थापक पतंजलि योग को यह रूप दिया, देखें:चटर्जी अंड दत्ता, पी. 42
9. ^ मन के नियंत्रण के लिए एक तंत्र के रूप में "राजा योग" के लिए और एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में पतंजलि के योग सूत्र के साथ संबंध के लिए देखे: फ्लड (1996), पीपी. 96-98.
10. ↑ *Patañjali (2001-02-01). "Yoga Sutras of Patañjali". Studio 34 Yoga Healing Arts. मूल (etext) से 25 अगस्त 2011 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2008-11-24.*
11. ↑ पाठ और शब्द मे से शब्द अनुवाद के लिए देखे:तैम्नी पी."योग इस दी इनहिबिशन ऑफ़ दी मोडीफिकेशंस ऑफ़ दी मैंड" 6.
12. ^ बारबरा स्टोलेर मिलर, *योगा:डिसिप्लिन टू फ्रीडम योग सूत्र पतंजलि को आरोपित किया है, पाठ का अनुवाद, टीका, परिचय और शब्दावली खोजशब्द के साथ.* कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रेस, 1996, पृष्ठ 9.
13. ^ विवेकानाडा, पी. 115
14. ^ स्टीफन एच. फिलिप्स, *क्लासिकल इंडियन मेताफ्सिक्स: रेफुताशन्स ऑफ़ रेअलिस्म अंड दी एमेर्गेंस ऑफ़ "न्यू लॉजिक".* ओपन कोर्ट प्रकाशन, 1995, पृष्ठ 12-13.
15. ^ जकोब्सन, पी. 10.
16. ^ भगवद गीता, एक पूरा अध्याय (ch. 6) पारंपरिक योग का अभ्यास करने के लिए समर्पित सहित. इस गीता मे योग के प्रसिद्ध तीन प्रकारों, जैसे 'ज्ञान' (ज्ञान), 'एक्शन'(कर्म) और 'प्यार' (भक्ति) का परिचय किया है।" फ्लड, पी. 96
17. ^ गम्भिरानान्दा, पी. 16
18. ^ जकोब्सन, पी. 46.
19. ^ हठयोग: यह प्रसंग, थिओरी अंड प्रक्टिस मिकेल बर्ली (पृष्ठ 16) द्वारा लिखा गया है।
20. ^ फयूएर्स्टें, जोर्ग. 1996). *दी शम्भाला गाइड टू योग* बोस्टन और लंदन: शम्भाला प्रकाशन, इंक

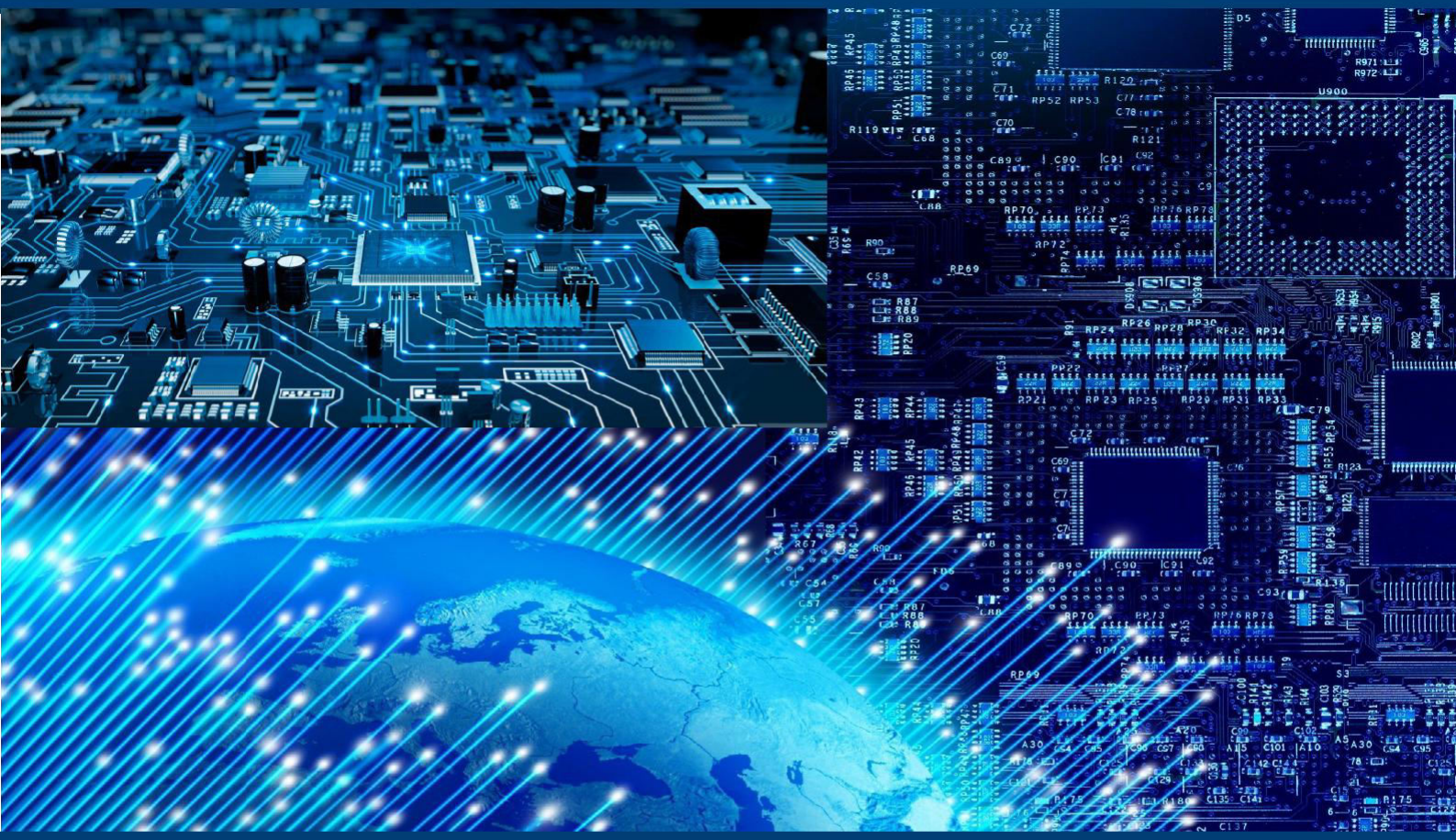

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |